Indian J. Soc. & Pol. 11 (01): 105-108 : 2024 **ISSN : 2348-0084 (PRINT)**
(July-December 2023), 29 February 2024 **ISSN: 2455-2127(ONLINE)**

वर्तमान भारत में 'हिंदू–राष्ट्र की अवधारणा' पर पक्ष, प्रतिपक्षीय विचारों का समाहरण

कृष्णानंद चतुर्वेदी[1]

[1]एसोसिएट प्रोफेसर, राजनीति विज्ञान विभाग, स्वामी सहजानंद स्नातकोत्तर महाविद्यालय, गाजीपुर, उ0प्र0, भारत

ABSTRACT

शोध पत्र का केंद्रीय तथ्य यह है कि भारत में राजनीतिक दलों ने एक ऐसा विभ्रम पैदा कर दिया है जहां हर सहिष्णु भारतीय यह महसूस करने लगा है कि क्या हम एक नए राष्ट्र के निर्माण की तरफ बढ़ रहे हैं या स्वतंत्रता के बाद आज तक की गई प्रगति निरर्थक है। भारत के समाचार पत्रों में और विशेषतः टेलीविजन चैनलों में राजनीतिक दलों के प्रवक्ताओं द्वारा इस प्रकार का वाद विवाद किया जा रहा है। भारत के सिनेमा जगत के कुछ कलाकारों या तथा–कथित बौद्धिक जनों द्वारा इस प्रकार की चर्चा की जाने लगी है। 1949 में बनने वाले भारत के संविधान ने अपने नीति निर्देशक तत्वों के भाग में उन सभी सनातनी मूल्यों की स्थापना हेतु भविष्यगामी सरकारों को दिशा–निर्देशित किया है और यह निर्देश सु–स्पष्ट भी है, फिर भी राजनीतिक जगत में इस प्रकार का असमंजस भारत के सामाजिक भाईचारे के लिए उचित नहीं है। 'सहिष्णुता' तथा 'सार्वभौमवाद' व्यक्तिगत गरिमा की रक्षा करते हैं और भारत का प्रत्येक नागरिक अपनी गरिमा में पूर्ण है। उसे किसी भी प्रकार दोयम दर्जे का स्थापित नहीं किया जा सकता और यह शंका ही भारत के जनमानस को अंदर तक झकझोर रही है प्रस्तुत शोध पत्र इन आशंकाओं को तर्कपूर्ण ढंग से विवेचित करने का प्रयास है।

KEYWORDS: *सहिष्णुता, राष्ट्र, सामासिक संस्कृति, राष्ट्रीय एकता, आत्मसात्, सर्वभौमवाद, व्यक्तिगत गरिमा, सत्ता लोलुपता, सनातन जीवन मूल्य तथा सनातन राष्ट्र ।*

प्रस्तावना

भारतीय राजनीतिक परिदृश्य में आज बहुत तेजी से 'हिंदू–राष्ट्र' एवं 'सनातन' पर गंभीर विमर्श चल रहा है। भारत के राजनीतिक दलों का पक्ष और प्रतिपक्ष दोनों अपने तर्कपूर्ण बातों से इसका पक्ष पोषण करता हुआ दिखाई दे रहा है । भारत विविधताओं से युक्त वह देश है जिसमें विभिन्न संस्कृतियां एक साथ संचारित हो रही हैं, पुष्पित हो रही हैं तथा अपनी सुगंध भारतीय जनमानस तक बिखेर रही हैं। किंतु 'तर्कपूर्ण–अतिवादिता' और लोक संचार के साधनों में ऐसा अतिवाद प्रसारित होता हुआ दिख रहा है कि भारत एक नए राष्ट्र के निर्माण की तरफ बढ़ रहा है या कमसे कम भारत दिग्भ्रम की स्थिति में जा रहा है।

हम सब लोगों की श्रद्धा राष्ट्र के प्रति है और ऐसी श्रद्धा आधारभूत भी होनी चाहिए। कई बार यह प्रश्न पैदा होता है कि हम 'हिंदू–राष्ट्र' की प्रतिष्ठा चाहते हैं क्या ? कुछ लोग यह भी कहते हैं कि हमें हिंदू राष्ट्र का निर्माण करना है। इस प्रकार की शब्द–रचना थोड़ी सी भ्रम पैदा करती है। भारत में आजकल बहुमत से लोग इस राष्ट्र के नए निर्माण की बात कर रहे हैं । नए राष्ट्र का निर्माण यद्यपि परतंत्रता कल से ही प्रारंभ हो चुका था, स्वतंत्रता के बाद इसने गति पकड़ी किंतु फिर भी आज नारा है कि 'हमें राष्ट्र बनाना है'।

सामयिक विमर्श

'वयम राष्ट्रे संगमनी,' तो क्या 'हिंदू–राष्ट्र' जैसी कोई चीज नहीं है, जो हमें नए सिरे से बनानी है? जिस नई व्यवस्था को निर्मित करना है वह क्या 'हिंदू–बहुल राष्ट्र' होगा या 'हिंदू–विचारधारा' पर आधारित होगा? इस महत्वपूर्ण उपादान पर एक ऐसा भ्रमजाल निर्मित किया गया है जिसमें राजनीतिक दल अपने को उपयोगी बनाए रखना चाहते हैं। आजकल लोगों का आग्रह रहता है कि राजनीतिक दल के रूप में वे संगठित होकर जो कुछ भी करें, वह 'वाद' के रूप में परिभाषित हों। इसीलिए उन्होंने 'हिंदू–राष्ट्रवाद' शब्द का प्रयोग किया है। यदि, यह एक कल्पना है तो, वही लोग जो इस कल्पना को सत्य करना चाहते हैं, उन्हें स्पष्टीकरण प्रस्तुत करना होगा या अपने विचारों का साम्य भारतीय जनमानस के साथ–साथ विरोधी दलों के साथ भी बैठना होगा, प्रमाण दिए जाने होंगे ,यह बात भी नहीं है कि अंधे को भी देखने वाली चीज प्रस्तुत करनी होगी। अर्थात् मनुष्य होने का प्रमाण नहीं देना होगा । यदि प्रमाण देना ही होगा तो वह होगी 'सहिष्णुता'।

वर्तमान के टीवी चैनलों पर, समाचार पत्रों में, राजनीतिक दलों के प्रवक्ता, वैचारिक संघर्ष करते हुए दिखाई देते हैं कि धर्मनिरपेक्ष राष्ट्र ही उचित है और 'हिंदू–राष्ट्र' थोपा जा रहा है। भारत में राजनीतिक दलों ने एक ऐसा विभ्रम पैदा कर दिया है जहां हर सहिष्णु भारतीय यह महसूस करने लगा है कि क्या हम एक नए राष्ट्र के निर्माण की तरफ बढ़ रहे हैं या स्वतंत्रता के बाद आज तक की गई प्रगति निरर्थक है।

भारत के समाचार पत्रों में और विशेषतः टेलीविजन चौनलों में राजनीतिक दलों के प्रवक्ताओं द्वारा इस प्रकार का वाद विवाद किया जा रहा है। भारत के सिनेमा जगत के कुछ कलाकारों या तथा–कथित बौद्धिक जनों द्वारा इस प्रकार की चर्चा की जाने लगी है। 1949 में बनने वाले भारत के संविधान ने अपने नीति निर्देशक तत्वों के भाग में उन सभी सनातनी मूल्यों की स्थापना हेतु भविष्यगामी सरकारों को दिशा–निर्देशित किया है और यह निर्देश सु–स्पष्ट भी है, फिर भी राजनीतिक जगत में इस प्रकार का

1: Corresponding Author

असमंजस भारत के सामाजिक भाईचारे के लिए उचित नहीं है। 'सहिष्णुता' तथा 'सार्वभौमवाद' व्यक्तिगत गरिमा की रक्षा करते हैं और भारत का प्रत्येक नागरिक अपनी गरिमा में पूर्ण है। उसे किसी भी प्रकार दोयम दर्जे का स्थापित नहीं किया जा सकता और यह शंका ही भारत के जनमानस को अंदर तक झकझोर रही है।

राष्ट्र, धर्म और धर्मनिरपेक्षता

'धर्मनिरपेक्षता' स्वतंत्रता के बाद राष्ट्र के रूप में अपनाई जाने वाली वह राजनीतिक जीवन पद्धति थी जिसके अनुसार बंटवारे के बाद काम किया जाना था। भारत में सफलतापूर्वक यह किया भी। हिंदू या मुसलमान धर्म में प्रत्येक व्यक्ति प्रथमतः मनुष्य है और मनुष्य के रूप में मानवीय मूल्यों का अनुशीलन किया ही जाना चाहिए। यदि हम अपने को हिंदू कहते हैं तो यह हमारे हृदय की बात है या भावनात्मक अनुभूति है। 'हिंदू–राष्ट्र' पुराना है, कब से है इसका पता लगा लेना इतिहासकारों का काम है जिस पर मतभेद संभव है। 'हिंदू–राष्ट्र' कब पैदा हुआ यह अतीत की घटना है, किंतु परिणाम से कोई इनकार नहीं कर सकता।

'राष्ट्र' नाम की इकाई वैश्विक परिदृश्य में सभी संप्रभुता प्राप्त देश में होती है। यह कृत्रिम नहीं है। यह जीवमान इकाई है, शारीरिक अंगों की ही भांति ही दिखाई देती है। हां ,बौद्धिक और मानसिक पृष्ठभूमि अनुभूति का विषय होते हैं। जिस प्रकार व्यवस्था निर्माण में अंगों की सार्थकता बनी रहती है वैसे ही राष्ट्र का विकास होता है। इस पल्लवित विकास के अंग हैं, लक्षण हैं–देश, समाज, संस्कृति, इतिहास, एक दृष्टि, समान मित्र–भाव। बहुत से लोग समझते हैं कि ऐसी सब चीज समान बना दो तो राष्ट्र बन जाएगा।

राजनीतिक रूप से यदि यह माना जाए कि 'गंगा–यमुनी तहजीब' बना देने से ही राष्ट्र बना रह सकता है तो संभवतः यह अपूर्ण होगा। संस्कृतियां राष्ट्र का निर्माण करती हैं और राष्ट्र द्वारा निर्मित भी होती हैं। राष्ट्र बनता नहीं पैदा हुआ है। अपनी संस्कृति के अनुकरण से, विभिन्न प्रकार के आक्रांताओं और भारतीय मूल निवासियों के आपसी रहन–सहन से इस रूप में जब व्यवहार में परिवर्तन आता है तो राष्ट्र का पतन भी होता है और उत्थान भी। जैसे मनुष्य बलवान भी होता है और कभी दुर्बल भी।

आज के राजनीतिक वातावरण में राजनीतिक दल या लोगों द्वारा जब 'हिंदू–राष्ट्र' की प्रतिस्थापना की बात होती है तो, वस्तुतः इसके तात्विक रूप एवं वर्तमान की प्रशासनिक व्यवस्था के परिवर्तन पर आघात करती हुई प्रतीत होती है और यदि ऐसा नहीं भी है तो प्रतिपक्षी लोगों द्वारा इसे ऐसा करता हुआ दिखाया जाता है।

राष्ट्र में तीन चीज प्रमुख हैं–

1. देश,
2. समाज,
3. संस्कृति।

तीनों को साथ विचार करना होगा किसी एक को नहीं, केवल कश्मीर से कन्याकुमारी तक की भूमि को इसका आधार बनाना ठीक नहीं है। क्योंकि देशद्रोही भी इसी भूमि पर पैदा होते हैं और धार्मिक विद्रोह तथा राष्ट्रीय एकता को आघात पहुंचाते हैं। राष्ट्र की दूसरी महत्वपूर्ण चीज है 'समाज'। समाज के संबंध में भी एकात्मक विचार रखना होगा। हम की भावना और साथ जिए–साथ बढ़े इस प्रकार की सामाजिक संस्कृति को आगे बढ़ाना होगा। तीसरी महत्वपूर्ण चीज है संस्कृति, जब इन तीनों का सम्यक अवधान होगा तब जाकर राष्ट्र नामक जीवंत व्यवस्था जन्म ले सकती है। जिस समाज में एकता की अनुभूति नहीं होती या जो समाज अपने देश के लिए उपयोगी भूमिका नहीं निभाता या ऐसी संस्कृति जो आधुनिकता को आत्मसात ना कर सके यह तीनों ही कारक राष्ट्र को संकट में डाल देते हैं।

भारत में कई बार व्यक्ति अपने भावनाओं को प्रकट करते समय नाना प्रकार की भाषाएं बोलने लगता है। धर्म के प्रति लगाव को अपनाने लगता है, वस्त्र या पहनावे को स्वीकार करने लगता है और जब इस प्रकार के कार्य व्यवहार अतिरेक को प्राप्त होते हैं तब राष्ट्र या देश पर वैचारिक संकट दिखने लगता है। समाज के सब लोगों से हमारा बंधुता का नाता है और ऐसा ही नाता देश से भी होना चाहिए। देश के घटक होने की जो भावना है, वह राष्ट्र को बल प्रदान करती है।

प्रायः भारत के बहुमत का, देश के बारे में, मातृभाषा एवं समझ में, एकता की भावना और जीवन के बारे में, एक ही दृष्टिकोण है। अन्य लोगों के भाव कभी–कभी चाहे वह मातृभाषा को लेकर हो, चाहे वह जीवन के अन्य पक्षो को लेकर हो, बहुमत के साथ मेल नहीं खाता और यही वह क्षण है जहां पर विभेद प्रखर होता जाता है। भारत ने देखा है कि कैसे इसके टुकड़े हुए, इसकी परंपराएं कैसे टूटी हैं जब 1942 में करो या मरो के नारे से भारतीय उठ खड़े हुए। सुभाष चंद्र बोस के नारे–तुम मुझे खून दो मैं तुझे आजादी दूंगा, से दुनिया में लोग आगे आने लगे उस समय भारत का टूटना अत्यंत दुर्भाग्यपूर्ण था। भारत में राजनीतिक परिवर्तन या सामाजिक परिवर्तन हेतु कोई भ्रम या दिशाहीनता नहीं है। राजनीतिक परिवर्तन के लिए भारत का संविधान जीवन के रूप में है बना हुआ है और सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक चरित्र का दिशा निर्देशन कर रहा है। ऐसी अवस्था में प्रश्न उठता है कि जब हमारे यहां परिवर्तन के लिए पवित्र संविधान है तो परिवर्तन के अन्य प्रकाश पुंजों को पुर्नस्थापित करने का क्या प्रयोजन?

वास्तव में संस्कृति की सार्थकता, सेवा, सत्य तथा परमार्थ की भावना एवं सहिष्णुता का संयोजन एक ऐसा स्नेहिल मंडल है जो नागरिकों को प्रेम पूर्ण जीवन बिताने का मार्ग दिखाता है। इस रूप में करुणा, सेवा भाव और अपने अतीत पर गौरव करना कहीं से भी विद्वेष कारक नहीं है। हमें अपनी श्रद्धा इन्हीं मानकों पर निर्मित करनी चाहिए अन्यथा की अवस्था में भारतीय राजनीतिक व्यवस्था संकट में पड़ सकती है। हम अपना जीवन सुखमय बनाएं, अपने स्वाभिमान को अक्षुण्ण रखें किंतु स्वाभिमान का उठना प्रतिस्पर्धा का कारण नहीं होना चाहिए या प्रतिस्पर्धा करता हुआ दिखाई नहीं देना चाहिए। हमें अपने कर्तव्यों पर ध्यान देना होगा यदि धर्म से हमारा राष्ट्र पोषित होता है तो कर्मकांडों के रूप में उसका स्वागत नहीं होना चाहिए।

भारत में चुनाव होते रहेंगे, राजनीतिक दल बनेंगे, बिगड़ेंगे और सरकारी आयेंगी, जायेगी, इन सब में जो अपरिवर्तित रहना है, वह है 'हमारा राष्ट्र'। अतः राष्ट्र की सेवा प्रमुख है। भारतीय संस्कृति को परिभाषित करना कठिन है। हम इसे महसूस कर सकते हैं। जिसमें हमारे मन में मातृभूमि के प्रति प्रेम हो तथा गौरव की भावना का संचार हो। प्रत्येक देश का अपना विशिष्ट स्वभाव होता है और हमें भी भारतीय होने के नाते उस विशिष्ट स्वभाव को बनाए रखना है। हमें अपनी एकात्मकता को मजबूत करना है तथा सभी को साथ लेकर चलना है। पीढ़ियां हिंदू और मुसलमान हो सकती हैं किंतु जीवन न हिंदू होता है ना मुसलमान। अतः राष्ट्र निर्माण और उसके स्वरूप को लेकर भारतीय जनमानस में नए सिरे से पक्ष–प्रतिपक्ष का उभरना शुभ संकेत नहीं है। आवश्यकता है इससे बचा जाए अन्यथा भारत में आने वाली पीढ़ियॉ इस संभावित वैमनस्यता का कुपरिणाम झेलेंगी।

भारत एक बहुधर्मी और बहुभाषी देश है। भारत में हिंदू, मुस्लिम, सिख, बौद्ध, जैन, पारसी आदि धर्म के लोग निवास करते हैं। भारतीय समाज का बहुमत हिंदू धर्म का अनुयायी है। स्वतंत्रता के बाद मुसलमान का कोई राजनीतिक दल राष्ट्रीय स्तर पर नहीं बन सका। दो प्रकार के मुस्लिम संगठनों ने राजनीति में भाग लिया प्रथम ऐसे संगठन जो शुद्ध राजनीतिक संगठन है–जैसे मुस्लिम लीग, मुस्लिम मजलिस तथा द्वितीय ऐसे संगठन जो मूल रूप से और राजनीतिक हैं जैसे–जमात–उद–दावा, जमातुल इस्लामी–मुशावरत, जमीअ–तुल उलेमा आदि।

स्वाधीनता के बाद कांग्रेस ने मुसलमानों में धर्मनिरपेक्ष दल के रूप में अपनी छवि भी बनाई। धर्मनिरपेक्षता के सिद्धांत को स्वीकार कर लेने के बावजूद भी कांग्रेस ने कुर्सी बनाए रखने के लिए 'मुस्लिम तुष्टिकरण' की नीति को सीने से चिपकाए रखा। जिसके कारण 1955 ई में 'जनसंघ पार्टी' का राजनीतिक क्षितिज पर उदय हुआ। राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ ने जनसंघ के राजनीतिक आधार को जमीनी स्तर पर मजबूत किया एवं इसका विस्तार कराया। इन दोनों संगठनों से खतरा महसूस करने के कारण मुसलमानों में यह भावना बलवती हुई की केवल कांग्रेस ही उनकी रक्षक है। इससे मुस्लिम मतदाताओं ने चुनाव में आंख बंद कर समर्थन किया। 1952ई, 1957ई एवं 1962ई तक चुनाव में तत्कालीन एक दलीय प्रभुत्व वाली कांग्रेस थोक भाव से मुस्लिम समाज के अधिकांश वोट बटोरती रही। लेकिन 1967ई के चौथे आम चुनाव में कांग्रेस को मुस्लिम मतदाताओं का कम वोट मिला। जिससे अखिल भारतीय कांग्रेस चौकन्नी हुई।

साम्यवादी दलों के शुरू होते प्रभाव ने पढ़े–लिखे प्रगतिशील मुसलमान को अपनी ओर आकर्षित किया। मुस्लिम दलों और संगठनों ने क्षेत्रीय दलों के साथ समझौता किया। कांग्रेस में आंतरिक खींचतान, आर्थिक नीतियों की आंशिक असफलता तथा उनकी अन्य नीतियों से विशेषतः मुसलमान समाज का कांग्रेस में विश्वास कम हुआ। जिसके फलस्वरुप श्रीमती इंदिरा गांधी ने अल्पसंख्यकों के सामने राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ एवं जनसंघ का हव्वा खड़ा कर मुस्लिम अधिकारों का ठेका लेने की चतुर राजनीतिक चाल चली। 1971 ई और 1972 ई के चुनाव में कांग्रेस की अद्भुत विजय के पीछे बहुतायत में मुस्लिम मतों की महत्वपूर्ण भूमिका रही। 1977 ई के लोकसभा चुनाव में और उसके आगे भी भारत के राजनीतिक चुनाव में दिल्ली के जामा मस्जिद के शाही इमाम द्वारा मुस्लिम मतदाताओं को विभिन्न राजनीतिक दलों के पक्ष में मतदान करने का खुल्लम खुल्ला फतवा जारी किया जाता रहा। इस प्रकार भारत में मुस्लिम मतों के ध्रुवीकरण का अपना इतिहास रहा है बाद में इसे उत्तर भारत के क्षेत्रीय राजनीतिक दलों ने अपना लिया और सत्ता में पहुंच गए। इस प्रकार भारत के राजनीतिक परिवेश में धर्म ने अपने विद्रूप स्वरूप में प्रवेश किया और आज का वह समय भी आ गया जब मुस्लिम मतों के ध्रुवीकरण के विरुद्ध हिंदू मतों के जुड़ाव पर बल दिया जाने लगा है । आज "श्री राम " याद आते हैं, हनुमान चालीसा और सुंदरकांड याद आता है । जिसका परिणाम यह है कि मुस्लिम मतदाताओं के अंदर हिंदू विरोध की भावना का आना परिणामस्वरूप अपेक्षित भय निवास करती जा रही है ।

निष्कर्ष

वर्तमान में भारत में 'प्रतीकों' की राजनीति ने अपना रंग दिखाना शुरू कर दिया है और स्थिति यह है कि राजनेताओं द्वारा टोपी पहने, भगवा धारण करने, मंदिर जाने, मस्जिद जाने, गुरुद्वारा जाने तथा संतो के आशीर्वाद लेने की परंपरा बढ़ती जा रही है। यह समस्त कारक भारत में धार्मिक रूप से हिंदू या मुसलमानों को एक दूसरे से भय पैदा कर रहे हैं । यही कारण है कि आज जब सनातन के रूप में शाश्वत मूल्य की भी चर्चा होती है, उनकी स्थापना की बात होती है, तब ऐसा प्रतीत कराया जाता है कि अल्पसंख्यक असुरक्षित हैं। यही कारण है कि भारत में असहिष्णुता के बढ़ने का भी आरोप लगता रहा है। वे शाश्वत मूल्य जिनका नामकरण सनातन के रूप में किया जा रहा है का अधिकांश भाग भारत के संविधान के नीति निर्देशक तत्वों में पहले से ही समायोजित किया जा चुका है । राष्ट्र के रूप में नागरिकों में एक समानता का भाव, कर्तव्यों का सम्मान तथा समान जीवन पद्धति की बातें संविधान के भाग चार में पहले से ही वर्णित की जा चुकी हैं। इस अवस्था में प्रश्न उठना स्वाभाविक है कि इन वर्णित दिशा–निर्देशों पर हम 'हिंदू–राष्ट्र' का ध्वज कैसे लगा सकते हैं।

REFERENCES

गॉधी, महात्मा (2009) *हिंदू धर्म क्या है* ,नई दिल्ली, नेशनल बुक ट्रस्ट इंडिया,

मोर, एस एल (1960) *"प्रैक्टिस एण्ड प्रोसीजर आफ इंडियन पार्लियामेंट"*

श्रीवास्तव, के सी (1996), *"प्राचीन भारत का इतिहास"* इलाहाबाद, यूनाइटेड बुक डिपो

अलतेकर, डॉ ए एस (1972) *"स्टेट गवर्नमेंट इन असिएंट इंडिया"*, वाराणसी, मोतीलाल बनारसी दास पब्लिशर्स

वर्मा, विश्वनाथ प्रसाद (1995) *,"आधुनिक भारतीय राजनीतिक चिंतन* लक्ष्मी नारायण अग्रवाल प्रकाशन

चतुर्वेदी डॉक्टर के एन (2009) *"भारत में केंद्रीय स्तर पर गठबंधन सरकारें "*, नई दिल्ली, क्लासिकल पब्लिशिंग कंपनी